62 प्रतिशत तक था हिस्सा अमेरिकी डालर का, कुल वैश्विक भंडार के रूप में वर्ष 2010 में, अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष के अनुसार। जबकि वर्ष 2020 में कम होते हुए यह 59 प्रतिशत और वर्तमान में यह 57.7 प्रतिशत तक आ चुका है।

रोहित प्रियदर्शी
लोक नीति विश्लेषक

आजकल

भारत में शहरी आवास की वास्तविक चुनौतियां

सर्वोच्च न्यायालय ने हाल ही में अपने एक निर्णय में रियल एस्टेट क्षेत्र की अधूरी आवासीय परियोजनाओं से जूझ रहे लाखों खरीदारों को राहत देने हेतु रिवाइवल फंड बनाने, रेरा को सशक्त करने और खरीदारों की जमा पूंजी को सुरक्षित रखने जैसे महत्वपूर्ण सुझाव दिए हैं। यह कदम उन परिवारों को राहत दे सकता है जो ईएमआइ और किराया, दोनों का बोझ उठा रहे हैं। आवश्यकता इस बात की भी है कि रियल एस्टेट क्षेत्र में बिल्डरों की जवाबदेही तय करते हुए रेरा को दंडात्मक शक्तियां भी दी जाएं। साथ ही, परियोजनाओं की पारदर्शी निगरानी सुनिश्चित की जाए, ताकि खरीदारों का विश्वास बहाल हो सके

मकान खरीदारों के हितों की अधिकतम सुरक्षा का रखा जाए ध्यान। फाइल

भारत का मध्यवर्ग आज अपने सपनों के सबसे बड़े निवेश एक घर को लेकर असमंजस और असुरक्षा में है। बहुत-से लोग अपनी जीवन भर की कमाई, और कई बार पीढ़ियों की जमा-पूंजी, किसी बिल्डर को एक छत की उम्मीद में सौंप देते हैं। उनके लिए घर केवल ईंट-पत्थर का ढांचा नहीं होता, बल्कि बच्चों का भविष्य, बुढ़ापे का सहारा और जीवन की सबसे बड़ी पूंजी होता है। इसीलिए सुप्रीम कोर्ट का हालिया फैसला बहुत महत्वपूर्ण है। अदालत ने केंद्र सरकार को सुझाव दिया है कि अधूरे पड़ी आवासीय परियोजनाओं को पूरा करने के लिए एक 'रिवाइवल फंड' बनाया जाए, ताकि खरीदारों की गाढ़ी कमाई फंसी न रहे। यह फैसला सिर्फ कानूनी नहीं, बल्कि समाज को यह याद दिलाने वाली पुकार है कि घर हर नागरिक की मूल जरूरत है, कोई अधूरा वादा नहीं।

आज देश भर में लाखों घर खरीदार हैं, जो किराया भी दे रहे हैं और ईएमआइ भी। यह दोहरा बोझ किसी आर्थिक गणित का नहीं, बल्कि एक मानसिक शोषण का प्रतीक बन गया है। ये लोग अपने सपनों की धूप देखने की कीमत में अंधेरों में जीने को विवश हैं। इन अधूरे प्रोजेक्ट्स में न केवल उनका पैसा फंसा है, बल्कि उनके मनोबल, उनके आत्मविश्वास और व्यवस्था पर उनके विश्वास सब कुछ गिरवी रख दिया गया है। बिल्डरों की मनमानी, रेरा की कमजोरी और न्यायिक ढांचे की सुस्ती ने ऐसा त्रिकोण रच दिया है जिसमें उपभोक्ता नीचे दबा पड़ा है।

सुप्रीम कोर्ट ने बिल्कुल सही कहा कि घर केवल संपत्ति नहीं, बल्कि अनुच्छेद 21 के तहत जीवन के मौलिक अधिकार का हिस्सा है। जब तक इंसान को रहने की सुरक्षित जगह नहीं मिलेगी, तब तक जीवन गरिमा के साथ नहीं जीया जा सकता। और गरिमा- संविधान का आत्मा है। जब कोई व्यक्ति अधूरे भवनों के जंगल में अपनी उम्र बर्बाद करता है, तो यह केवल उसकी व्यक्तिगत विफलता नहीं, बल्कि शासन-प्रशासन की असफलता भी है। यही वह संदर्भ है जिसमें कोर्ट का यह फैसला जरूरी दस्तक की तरह प्रतीत होता है।

रिवाइवल फंड की अवधारणा इस लिहाज से आश्वस्त करती है कि यह अधूरे प्रोजेक्ट्स को अंतिम चरण का वित्त मुहैया करवा सकेगा। ब्रिज फाइनेंसिंग से ठेकेदारों का काम रुके नहीं, निर्माण फिर से शुरू हो, और खरीदारों को यह भरोसा हो सके कि उनका सपना अब भी पूरा हो सकता है। कोर्ट ने यह भी सुझाया कि बिना बिके फ्लैटों को सरकारी योजनाओं में इस्तेमाल किया जा सकता है। यह न केवल संसाधनों का बेहतर उपयोग होगा, बल्कि लाखों बेघर परिवारों को सस्ती छत भी मिल सकेगी।

क्यों पैदा हुआ संकट : पर असल सवाल है कि यह संकट पैदा ही क्यों हुआ? क्यों रियल एस्टेट सेक्टर एक सुनियोजित सट्टेबाजी का अखाड़ा बन गया, जहां बिल्डर उपभोक्ताओं के पैसे से साम्राज्य खड़ा करते हैं और उपभोक्ता बरसों बाद भी अपनी छत को तरसते हैं? इसका उत्तर उसी संरचना में छिपा है जिसने उन्हें बिना जवाबदेही के काम करने दिया। रेरा कानून की कमजोरी, राज्यों में उसके नियमों की असमानता और उसके अधिकारियों की संसाधनहीनता ने उसे वास्तव में एक 'बिना दांत वाला बाघ' बना दिया। ऐसे में कोर्ट ने बिल्कुल सही चेताया है कि अगर रेरा को आवश्यक अधिकार, संसाधन और लागू करने की क्षमता नहीं दी गई तो वह केवल कागजी खानापूर्ति बनकर रह जाएगा। उपभोक्ताओं की रक्षा के लिए बनी संस्था अगर बिल्डर-लाबी के दबाव में निष्क्रिय रहे तो यह न्याय का उपहास है। रेरा को न केवल दांत दिए जाने चाहिए, बल्कि उन्हें तेज भी किया जाना चाहिए। इसके लिए उसके आदेशों की अवहेलना पर दंडात्मक कार्रवाई सुनिश्चित करनी होगी।

रियल एस्टेट से जुड़े दिवालियापन मामलों के वर्षों तक लंबित रहने से उपभोक्ता न्याय से वंचित रहते हैं। कोर्ट ने ठीक ही कहा कि इन संस्थाओं में खाली पदों को भरा जाए और जरूरत पड़ने पर सेवानिवृत्त न्यायाधीशों की नियुक्ति कर विशेष बेंचें बनाई जाएं। न्याय में देरी, न्याय से वंचित होने के बराबर है, और यह देरी यहां करोड़ों आम नागरिकों के जीवन पर सीधा आघात कर रही है।

रकम का पूर्ण सदुपयोग : एक और उल्लेखनीय सुझाव अदालत ने दिया कि नए प्रोजेक्ट्स में खरीदारों द्वारा किए गए भुगतान को एस्क्रो खातों (तीसरे पक्ष की निगरानी में एक सुरक्षित राशि) में जमा किया जाए और केवल निर्माण की प्रगति के अनुसार ही उसका निर्गम हो। इस व्यवस्था से बिल्डर खरीदारों के पैसे का दुरुपयोग नहीं कर सकेंगे और खरीदारों को भी अपनी रकम की सुरक्षा का भरोसा मिलेगा। कोर्ट ने यह भी सुझाव दिया कि हाउसिंग बोर्ड, राज्य स्तरीय शहरी विकास प्राधिकरण और केंद्रीय सार्वजनिक उपक्रमों को समर्पित प्रकोष्ठ बनाकर इन रुकी हुई परियोजनाओं को आइबीसी तंत्र के तहत पुनर्जीवित करना चाहिए। यह न केवल उपभोक्ताओं का विश्वास बहाल करेगा, बल्कि अफोर्डेबल हाउसिंग के क्षेत्र में भी नई ऊर्जा भरेगा।

आगे की राह : यदि हम केवल रिवाइवल फंड बनाकर धन झोंक देंगे, तो यह उसी पुराने रोग का नया उपचार मात्र होगा। वास्तविक समाधान यही है कि आवास निर्माण क्षेत्र में जवाबदेही की ठोस व्यवस्था विकसित की जाए। प्रत्येक परियोजना के लिए बिल्डरों की स्वनिधि निवेश अनिवार्य की जाए, जिससे उनका भी अपना पूंजीगत दांव परियोजना की सफलता से जुड़ा हो। इस प्रकार वे केवल खरीदारों के धन पर खेल नहीं खेल पाएंगे। दूसरा, प्रत्येक परियोजना की मासिक प्रगति सार्वजनिक पोर्टल पर प्रकाशित की जाए और किसी भी विलंब पर बिल्डरों को स्वचालित दंड व ब्याज भुगतान का दायित्व दिया जाए। इसके साथ ही खरीदारों को ऋण के किस्त भुगतान को प्रगति से जोड़ने की अनुमति दी जाए, जिससे वे अधूरी परियोजनाओं में अंधाधुंध ईएमआइ न चुकाते रहें। तीसरा, केंद्र सरकार को रेरा को न्यायिक शक्तियों से संपन्न करना चाहिए। आज रेरा केवल निर्देश दे सकता है, दंडात्मक कार्रवाई नहीं कर सकता। यदि उसे एनसीएलटी जैसी अर्ध-न्यायिक हैसियत दी जाए, तो खरीदारों के हित में वास्तविक निवारण संभव होगा।

शहरी नियोजन प्रक्रिया में हो व्यापक परिवर्तन

भारत में शहरी आवास की समस्या विकराल रूप में सामने आ रही है। यह हमारी सामाजिक असमानता और विकास की विकृत प्राथमिकताओं का आईना भी है। महानगरों की चमकती रोशनियों के नीचे झुग्गियों का अंधेरा पसरा हुआ है, और यही विरोधाभास हमारे शहरी नियोजन की सबसे बड़ी विफलता को उजागर करता है। देश की स्वतंत्रता के पश्चात हमने औद्योगिकीकरण और शहरीकरण को विकास का पर्याय मान लिया, परंतु इस संक्रमण में सबसे बड़ी चूक यह हुई कि हमने लोगों को शहरों में बसाने की योजना तो बनाई, पर उन्हें गरिमामय जीवन देने की सोच विकसित नहीं की। परिणामस्वरूप आज भी करोड़ों लोग असंगठित और अनौपचारिक बस्तियों में रहने को विवश हैं। वे रोज शहर को सस्ते श्रम की ऊर्जा देते हैं, पर शहर उन्हें रहने की न्यूनतम सुविधा भी नहीं दे पाता। यह विडंबना एक लोकतांत्रिक राष्ट्र के लिए चिंताजनक है।

शहरी आवास संकट का मूल कारण भूमि की कृत्रिम दुर्लभता है। हमारे नगरों में भूमि उपलब्ध है, किंतु उसे नियोजित ढंग से उपयोग करने की राजनीतिक इच्छाशक्ति का अभाव है। भूमि बाजार बड़े उद्योगपतियों और रियल एस्टेट पूंजीपतियों के कब्जे में है, जो ऊंचे लाभ के लिए भूखंडों को रोककर रखते हैं और दाम आसमान पर पहुंचा देते हैं। गरीब और निम्न मध्यमवर्ग इस प्रतिस्पर्धा में शामिल ही नहीं हो पाते। यहां तक कि जो सरकारी भूमि उपलब्ध है, वह भी लालफीताशाही और भ्रष्टाचार में फंसी रहती है। इसके साथ ही नगर निकायों की योजनाएं अक्सर इस धारणा पर आधारित रहती हैं कि गरीब नागरिक एक अस्थायी समस्या हैं, जिन्हें शहर की सुंदरता के लिए कहीं हटा देना चाहिए। इस सोच ने झुग्गी पुनर्वास को भी 'उखाड़ो-बसाओ' के ठेकेदारी दृष्टिकोण तक सीमित कर दिया है। लोग शहर के केंद्र से दूर खदेड़े जाते हैं, जहां काम तक पहुंचने में घंटों लगते हैं। यह विस्थापन उनके रोजगार, बच्चों की शिक्षा और सामाजिक ताने-बाने को तोड़ देता है।

बढ़ती आबादी और प्रवासन ने स्थिति को और जटिल कर दिया है। शहर रोजगार के अवसरों के कारण आकर्षण का केंद्र बने हुए हैं, किंतु वहां का बुनियादी ढांचा उसी अनुपात में नहीं बढ़ा। जल, सीवरेज, परिवहन, ऊर्जा- सब पर बोझ बढ़ता गया, और आवास निर्माण पीछे छूटता गया। निजी क्षेत्र उच्च आय वर्ग के लिए लक्जरी फ्लैट बनाने में व्यस्त रहा, जबकि निम्न आय वर्ग की आवश्यकताओं को बाजार ने पूरी तरह उपेक्षित कर दिया। इस समूचे परिदृश्य का सबसे दुखद पहलू यह है कि आवास को हम अब भी सामाजिक अधिकार नहीं, बल्कि एक उपभोक्ता वस्तु मानते हैं। जब तक इस सोच में परिवर्तन नहीं आएगा, तब तक कोई भी योजना सफल नहीं होगी।

सरकार को भूमि बैंकिंग और जोनिंग की नीतियों में आमूलचूल सुधार करना होगा। शहरी भूमि पर सट्टेबाजी को नियंत्रित कर, उसे सार्वजनिक हित में मुक्त करना होगा। निजी डेवलपर्स को सस्ते आवास बनाने के लिए बाध्यकारी लक्ष्य दिए जा सकते हैं, और झुग्गियों के भीतर ही सुधार कर उन्हें व्यवस्थित बस्तियों में बदलने की नीति अपनानी चाहिए। साथ ही, हमें यह स्वीकार करना होगा कि शहर केवल अमीरों का नहीं होता। शहर का आत्मा वे लोग हैं जो आटो चलाते हैं, सफाई करते हैं, घरों में काम करते हैं, जो शहर को हर सुबह चलाते हैं और हर रात फिर से थका कर सुला देते हैं। अगर वे ही सड़कों पर सोने को मजबूर हों, तो हमारे गगनचुंबी भवन भी केवल खोखले प्रतीक रह जाएंगे।

(रोहित प्रियदर्शी)

फिर से

सत्तू यानी सात अनाज

मां कहती हैं कि सतुआ (सत्तू) तब तक सतुआ नहीं कहलाता जब तक वह सात अनाज से मिलकर न बना हो। सत्तू में मक्की, जौ, ज्वार, मटर, चना, बाजरा और गेहूं मां डालती थीं। इन सभी अनाज को भिगोकर सुखाती थीं और फिर भाड़ में भूनने के लिए भिजवा देती थीं। भुजाईन काकी के लिए पारिश्रमिक अलग से चावल बांधकर देती थीं। अगर उन्हें अलग से मेहनताना नहीं दिया जाता था तो काकी भूनने के लिए आए अनाज का कुछ हिस्सा भुजाई के मूल्य के रूप में रख लेती थीं।

काकी जिसका भूजा भूजती थीं, उससे ही भाड़ झोकवाती थीं। भाड़ जलते ही सोंधी सुगंध जब नाक में चढ़ती थी तो फिर मन गर्म-गर्म भूजा चबाने के लिए बेताब हो उठता था। मां फिर कुछ न कुछ देकर भुजाने भेज देती थीं। जो आनंद गर्म-गर्म भूजे का होता है, उतना स्वाद रखे हुए में नहीं आता है।

खैर, सतुआ से चले थे भूजा पर आ अटके तो सतुआ की तरफ वापस चलते हैं। सतुआ जब भुजा कर आ जाता था तब जांता धोया जाता था, फिर मां और काकी मिलकर सतुआ पीसती थीं। दोपहर जब तीन बजे वाली भूख लगती थी, तब भोजन के बजाय हमारे गांव का दो मिनट वाला चटपटा, स्वास्थ्यवर्धक, पौष्टिक आहार तैयार होता था। फटाफट नमक डालकर घोल लिया, चटनी, प्याज, सिरका, हरी मिर्च संग खाकर आनंद लिया।

हमारे यहां बेटी के घर का पानी पीना निषेध किया गया है, सो हमारे बुजुर्ग जब कभी बिटिया के घर जाते थे तो संग में सतुआ बांध ले जाते थे। गांव में किसी के घर से पानी मंगवा कर घोलकर सतुआ खा लेते थे। खाने से मेरा तात्पर्य खाना ही है। अब आप लोग सोचेंगे कि सत्तू तो पिया जाता है और मैं खाना लिख रही हूं, तो सत्तू अब पिया जाने लगा है। पहले गाढ़ा सा घोलकर उंगली से चाट-चाट कर खाया ही जाता था।

घर का कोई सदस्य सुबह जल्दी कहीं जाने लगता था तो सत्तू सबसे उत्तम भोजन होता था। दूर जाना है तो सत्तू बांधकर साथ ले जाता था। हमारे यहां सतुआन नाम से बाकायदा एक लोकपर्व है, उसमें उस दिन घर के सभी सदस्य एक समय सतुआ ही खाते हैं और उस दिन सतुआ खाना अनिवार्य माना जाता है।

(अरूणिमा सिंह की फेसबुक वाल से संपादित अंश, साभार)

पोस्ट

पाकिस्तान ने आइसीसी के समक्ष अपनी मांगें रखकर अल्टीमेटम दिया कि उन्हें नहीं माना गया तो वह एशिया कप का बहिष्कार करेगा। उसकी मांगों पर तो कोई विचार नहीं हुआ, लेकिन पाकिस्तान ने मैच जरूर खेला। लगता है शर्मिंदगी उठाए बिना पाकिस्तान का कोई दिन नहीं बीतता।
शिवानी शुक्ला@iShivani_Shukla

इसमें सभी के लिए सबक छिपा है कि कभी भी ऐसा अल्टीमेटम नहीं देना चाहिए, जिसे आप लागू न कर सकें। इससे आप और कमजोर दिखते हैं।
हर्षा भोगले@bhogleharsha

जिन्हें भी आपरेशन सिंदूर की सफलता पर संदेह रहा हो तो वे जैश के आतंकी और अजहर मसूद के खास चेले इलियास के बयान को सुन लें। उसे सुनकर धुंध छंट जानी चाहिए।
अमिताभ अग्निहोत्री@Aamitabh2

कांग्रेस चुनाव से पहले माहौल बनाने के प्रयास में है। यह नैरेटिव की लड़ाई है। हर पक्ष खुद को सही साबित करने की कोशिश में है, लेकिन तटस्थ होकर सोचा जाए तो चुनाव में अनियमितता के मामले को अदालत में ले जाने में आपत्ति क्या है?
मीनाक्षी जोशी@IMinakshiJoshi

जागरण जनमत — कल का परिणाम

क्या भारत-अमेरिका व्यापार समझौते की बाधाएं दूर होती दिख रही हैं?

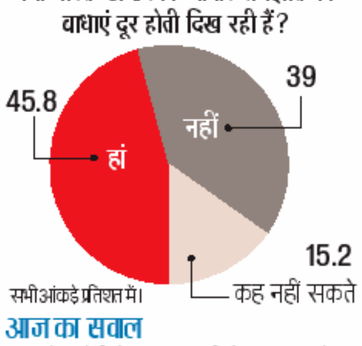

सभी आंकड़े प्रतिशत में।

आज का सवाल

क्या वोट चोरी के राहुल गांधी के ताजा आरोप विश्वसनीय लग रहे हैं?

परिणाम जागरण इंटरनेट संस्करण के पाठकों का मत है।

जनपथ

खाए पाकिस्तान ने सौ जूते, सौ प्याज,
बेइज्जती करा रहा वह अपनी मय ब्याज।
वह अपनी मय ब्याज हर जगह करता हुज्जत,
तो कैसे यह देश भला पाएगा इज्जत!
ये पिटकर हर बार कहानी अपनी गाए,
होय जंग या खेल हर जगह मुंह की खाए।
– ओमप्रकाश तिवारी

प्रदीप सिंह
राज्य ब्यूरो प्रमुख, झारखंड

झारखंड डायरी

कुड़मी-आदिवासी में टकराव की आशंका

झारखंड समेत बंगाल और ओडिशा में आने वाले दिनों में रेल व सड़क मार्ग बाधित होने की है। दरअसल एक बार फिर इन तीनों प्रांतों के कुड़मी जातीय संगठन अपनी उस पुरानी मांग को लेकर उग्र हैं, जिसमें वे स्वयं के लिए आदिवासी का दर्जा चाहते हैं। झारखंड में प्रभावी यह समुदाय राज्य से सटे बंगाल और ओडिशा के कुछ जिलों में भी राजनीतिक उलटफेर की क्षमता रखता है, लिहाजा राजनीतिक दल इस मुद्दे पर सुविधा की राजनीति करते हैं, लेकिन इस बार बयानों का टकराव आरंभ हो गया है। दिल्ली में प्रदर्शन करने के बाद कुड़मी संगठनों ने आगामी 20 सितंबर को रेल टेका, डहर छेका यानी रेल रोको और सड़क जाम आंदोलन का एलान कर दिया है।

इसकी व्यापक तैयारी चल रही है। इसके समानांतर आदिवासी संगठनों ने विरोध का बिगुल फूंक दिया है। इनका कहना है कि कुड़मी आदिवासी हो ही नहीं सकते। अगर वे आंदोलन करेंगे तो समानांतर आंदोलन आरंभ किया जाएगा। 14 सितंबर को रांची में आदिवासी संगठनों ने बाइक रैली निकालकर चुनौती भी पेश की है। उधर कुड़मी संगठनों की अगुवाई कर रहे लोगों का मत है कि यह मामला टकराव का नहीं, बल्कि समुदाय की मांग का है। आदिवासी संगठनों की धमकी के बाद कुड़मी बहुल गांवों में इस आंदोलन को अधिकाधिक व्यापक बनाने का संदेश दिया गया है।

इससे पूर्व हुए आंदोलन में जनजीवन पर असर पड़ा था। देखना होगा कि इस बार आंदोलन का असर क्या होता है। अगर दोनों समुदायों में टकराव की नौबत आई तो स्थिति बिगड़ सकती है। इससे सामाजिक तानाबाना भी बिगड़ सकता है, क्योंकि दोनों समुदाय आपस में मिल-जुलकर रहते आए हैं, लेकिन इस मांग ने दोनों को आमने-सामने लाकर खड़ा कर दिया है।

आदिवासी का दर्जा दिए जाने के लिए पहले भी आंदोलन कर चुका है कुड़मी समुदाय। फाइल

ऐतिहासिक दस्तावेजों का हवाला देकर कुड़मी संगठन दावा करते हैं कि 1931 की जनगणना तक कई इलाकों में कुड़मी को ट्राइब की श्रेणी में रखा गया था। स्वतंत्रता के बाद जब अनुसूचित जनजातियों की सूची अंतिम रूप से तैयार हुई, तब कुड़मी को आदिवासी सूची से बाहर कर दिया गया और इन्हें अन्य पिछड़ा वर्ग (ओबीसी) में शामिल कर दिया गया। संगठन का कहना है कि यह एक ऐतिहासिक भूल है, जिसे सुधारकर इन्हें कुड़मी को आदिवासी दर्जा दिया जाना चाहिए।

इधर आदिवासी संगठनों का तर्क बिल्कुल उलट है। उनका कहना है कि कुड़मी आदिवासी नहीं, बल्कि खेतिहर जाति है और इन्हें आदिवासी सूची में शामिल करना मौजूदा आदिवासी समुदायों के संसाधन और अधिकारों का अतिक्रमण होगा। आदिवासी संगठनों को डर है कि यदि कुड़मी को आदिवासी का दर्जा मिल गया तो सरकारी नौकरियों और शैक्षणिक संस्थानों में उनके आरक्षण का हिस्सा घट जाएगा। उनका दावा है कि कुड़मी संस्कृति और आदिवासी संस्कृति में बुनियादी फर्क है, इसलिए इन्हें आदिवासी कहना इतिहास के साथ छेड़छाड़ होगा।

ऐसे में रेल रोके जाने से झारखंड, बंगाल और ओडिशा के कई महत्वपूर्ण रूट इससे दुष्प्रभावित हो सकते हैं। इनमें कोलकाता-दिल्ली, टाटानगर-राउरकेला और हावड़ा-मुंबई जैसे व्यस्त कारिडोर शामिल हैं। हाइवे और प्रमुख सड़कें अवरुद्ध होने से परिवहन और व्यापार ठप हो सकता है। मालवाहक गाड़ियां, कोयला और लौह अयस्क की सप्लाई रुक सकती है, जिसका असर उद्योगों और बिजली उत्पादन तक पर पड़ेगा। यात्रियों और स्थानीय लोगों को भारी परेशानी होगी।

पूर्व में हो चुके आंदोलन में भी लोगों को भारी परेशानी झेलनी पड़ी थी। वर्तमान आंदोलन ने दोनों समुदायों के रिश्तों में तनाव की स्थिति पैदा की है। टकराव बढ़ा तो स्थिति बिगड़ सकती है। राजनीतिक ध्रुवीकरण भी हो सकता है। विभिन्न दल इस मुद्दे को वोट बैंक की राजनीति में इस्तेमाल कर सकते हैं। लंबे समय में यह दो समुदायों के बीच स्थायी अविश्वास पैदा कर सकता है।

इस पूरे विवाद का राजनीतिक पहलू भी बेहद अहम है। राजनीतिक दल इसके समर्थन में बोलते तो हैं, लेकिन यह चुनावों के आसपास ही चर्चा के केंद्र में आता है। जहां कुड़मी बहुल क्षेत्र है, वहां उनके समर्थन की बातें होती हैं और आदिवासी बहुल क्षेत्रों में चुप्पी या विरोध दिखाया जाता है। इसमें अंतिम फैसला केंद्र सरकार के स्तर पर ही होगा, क्योंकि अनुसूचित जनजातियों की सूची में बदलाव संसद की स्वीकृति से संभव है। जोखिम यह है कि ऐसा करने से कई प्रांतों में ऐसी मांगें उठ सकती हैं।

मंथन

डा. अश्विनी महाजन
पूर्व प्रोफेसर, पीजीडीएवी कालेज, दिल्ली विश्वविद्यालय

कायम रहेगी सोने की चमक

भू-राजनीतिक तनावों और आर्थिक उथल-पुथल एवं डालर की ताकत निरंतर कम होने के कारण सोने की मांग कम होती नहीं दिख रही है, जिस कारण इसकी कीमतें बढ़ रही हैं

सोने की कीमत नौ सितंबर को अंतरराष्ट्रीय बाजार में अपने सर्वकालिक उच्च स्तर 3,673.95 डालर पर पहुंच गई और इस साल अब तक इसमें 38 प्रतिशत की वृद्धि दर्ज की गई है। मजबूत निवेश मांग के चलते आस्ट्रेलियाई ऋणदाता एएनजेड समूह ने सोने की कीमत का अनुमान बढ़ाकर इस वर्ष के अंत तक 3,800 डालर प्रति औंस कर दिया है। एएनजेड ने उम्मीद जताई है कि अगले जून तक कीमतें चार हजार डालर के करीब पहुंच जाएंगी। कमजोर डालर, मजबूत केंद्रीय बैंक खरीदारी, नरम मौद्रिक रुख और बढ़ती वैश्विक अनिश्चितता ने सोने की बढ़ती कीमतों को बल दिया है।

केंद्रीय बैंक की सोने की खरीद 2025 में 900 मीट्रिक टन से 950 मीट्रिक टन के बीच रहने का अनुमान है, जिसका अर्थ है कि वर्ष की दूसरी छमाही में 485 टन से 500 टन तक की खरीद होने की उम्मीद है। वहीं चीन के केंद्रीय बैंक ने अगस्त में अपने सोने के भंडार में वृद्धि की, जिससे लगातार इसकी खरीद जारी रही। श्रम बाजार के लिए बढ़ते जोखिम के कारण अमेरिकी फेडरल रिजर्व मार्च 2026 तक अपना नरम रुख जारी रख सकता है। इस वजह से अमेरिकी ट्रेजरी यील्ड पर दबाव बढ़ेगा, जो सोने की खरीद को प्रेरित कर सकता है।

भारत में सोने के साथ एक भावनात्मक जुड़ाव है, जो शायद कई देशों में नहीं पाया जाता, और यही बात लोगों को यह जानने के लिए उत्सुक बनाती है कि सोने की कीमतों में अचानक इतनी तेजी क्यों आई है। अनुमान है कि दुनिया में कुल ज्ञात सोने में से, जो 1.87 लाख टन है, लगभग 25 हजार टन भारत में पाया जाता है। यह भारतीय घरों में ऐतिहासिक रूप से रखे गए सोने और समय के साथ दुनिया के बाकी हिस्सों से सोने की खरीद का परिणाम है। भारतीय रिजर्व बैंक के पास दिसंबर, 2024 तक के आंकड़ों के अनुसार 876 टन सोना है, जो अब दुनिया में आठवां सबसे बड़ा भंडार है।

भविष्य की संभावनाएं : हालांकि सोने की कीमतों में अभूतपूर्व वृद्धि हुई है, लेकिन भविष्य में भी यह वृद्धि जारी रह सकती है या इसकी गति में और तेजी आ सकती है। सोने की कीमतों में इस वृद्धि के कई कारण बताए जा रहे हैं। सर्वप्रथम, अमेरिकी केंद्रीय बैंक फेडरल रिजर्व की उदार नीति को इसका सबसे बड़ा कारण माना जा रहा है। अमेरिका का फेडरल रिजर्व आर्थिक गतिविधियों को प्रोत्साहन देने हेतु पिछले कुछ समय से ब्याज दर को घटाने का रुख अपनाए हुए है, जिससे अमेरिकी ट्रेजरी में यील्ड कम रहेगी, जिसके चलते सोने में अधिक लाभ रहने की संभावना है। इसके अलावा कम ब्याज दरें सोने की अवसर लागत को कम करती हैं। जब ब्याज दरें ऊंची होती हैं, तो निवेशक बांड या जमा को प्राथमिकता देते हैं, क्योंकि इनसे सुरक्षित रिटर्न मिलता है। लेकिन जब दरें कम होती हैं, तो सोना रखने की अवसर लागत कम हो जाती है, जिससे यह अधिक आकर्षक हो जाता है। साथ ही आसान मौद्रिक नीति अक्सर अमेरिकी डालर के मूल्य में गिरावट का कारण बनती है, क्योंकि अधिक डालर प्रचलन में होते हैं। अंतरराष्ट्रीय स्तर पर सोने की कीमत डालर में तय होती है। कमजोर डालर विदेशी खरीदारों के लिए सोने को सस्ता बनाता है, जिससे मांग बढ़ती है। आसान मौद्रिक नीति मुद्रा आपूर्ति को बढ़ाती है और समय के साथ मुद्रास्फीति को बढ़ावा दे सकती है। सोने को मूल्य के भंडार और मुद्रास्फीति के विरुद्ध बचाव के रूप में देखा जाता है।

दूसरा, बढ़ते भू-राजनीतिक तनाव के चलते सोने को सर्वाधिक सुरक्षित निवेश माना जा रहा है। इतिहास में देखा गया है कि जब-जब युद्ध और संघर्ष की स्थिति आती है, तमाम देश और लोग सोने में ही सर्वाधिक निवेश करने की प्रवृत्ति रखते हैं। तीसरा, दुनिया में अभी तक डालर को ही रिजर्व करेंसी के नाते सर्वाधिक मान्यता प्राप्त थी। पिछले कुछ वर्षों में रिजर्व में डालर का महत्व कम होना शुरू हो गया है। इस बीच यूक्रेन-रूस युद्ध के दौरान अमेरिका द्वारा जब रूस के विदेशी मुद्रा भंडार को लगभग जब्त कर लिया गया, तो उसके बाद से अमेरिका पर अन्य देशों का विश्वास टूटना शुरू हो गया है। शायद यही कारण है कि दुनिया भर के केंद्रीय बैंक अब डालर की बजाय अधिक से अधिक सोना रखना चाहते हैं, इसलिए उनके द्वारा सोने की खरीद में अभूतपूर्व वृद्धि हुई है, और यह प्रवृत्ति लगातार बढ़ती जा रही है। अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष के अनुसार, वैश्विक भंडार के रूप में डालर का हिस्सा 2010 में 62 प्रतिशत, 2020 में 59 प्रतिशत और 2025 में 57.74 प्रतिशत तक पहुंच चुका है।

चौथा, मुद्रास्फीति व मुद्रा अवमूल्यन भी सोने की अधिक मांग का कारण बन रहे हैं। जब मुद्रास्फीति बढ़ती है, तो कागजी मुद्रा का वास्तविक मूल्य गिर जाता है। सोना, सीमित आपूर्ति वाली एक मूर्त संपत्ति होने के कारण, धन की रक्षा करने में सहयोग करता है। पांचवां, सर्वाधिक महत्वपूर्ण कारण टैरिफ युद्ध है। अमेरिका के राष्ट्रपति द्वारा दुनिया भर पर टैरिफ थोपने के कारण विदेशी व्यापार क्षेत्र में असमंजस बना हुआ है। यह असमंजस भी सोने की मांग और कीमतों को बढ़ाने का काम कर रहा है।

निवेश का सुरक्षित माध्यम होने समेत कई अन्य कारणों से सोने की चमक तेजी से बढ़ रही है। फाइल

****